अर्थववेद में प्रतिपादित चिकित्सा विज्ञानः एक अनुशीलन

साधना देवी
शोधच्छात्रा
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद।

मानव जीवन के विविध पक्षों की तात्त्विक मीमांसा करने वाले अथर्ववेद का महत्व संसार में सर्वविदित है। सायण आचार्य ने अथर्ववेद भाष्य[1] भूमिका के प्रारम्भिक श्लोक में अथर्ववेद को लौकिक एवं पारलौकिक दोनों जीवन के फल को प्रदान करने वाला बताया है। अथर्ववेद में तात्कालिक लोकोंपयोगी विचारों का संग्रह है। जनविश्वास एवं जनरीतियों के विशाल संग्रह के कारण यह वेद अधिक रोचक एवं सर्वजनग्राह्य है। मॉरिस फिलिप[2] का यह मत अथर्ववेद के इसी पक्ष को परिपुष्ट करता है। लुई रेऊ[3] ने भी अथर्ववेद को अन्य वेदों की अपेक्षा अधिक व्यावहारिक और परिवर्तनशील विचार धारा का पोषक बताया है। इसमें औषधि का व्यापक एवं विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। चार ऋत्विजों यथा–होता, अध्वर्यु, उदगाता एवं ब्रह्मा की यज्ञ का संचालक होता है। अन्य तीन वेदों का ज्ञाता होने के साथ उनसे अथर्ववेद के मंत्रों का परिज्ञान अपेक्षित है। गोपथ ब्राह्मण[4] पूर्वभाग में ब्रह्मा को ही यज्ञ के आन्तरिक भाग को पुष्ट करने वाला बताया गया है। कि यज्ञादि अनुष्ठानों में अथर्ववेद के मन्त्रों का उल्लेख न मिलने पर तथा ऋग्वेद आदि में अथर्ववेद का उल्लेख न होना आदि कारणों से वेदत्रयी (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद) के अन्तर्गत नहीं रखा गया है। पूर्व मीमांसा[5] में स्पष्ट ही उल्लेख है कि ऋक् छन्दों बद्ध, शेषे गद्यात्मक यजुष् गीतात्मक समान् इससे यह स्पष्ट होता है कि ये विभाग वर्णन शैली के आधार पर किया गया है कि न कि अथर्ववेद को वेद न मानने के लिए। ऋग्वेद में भी अथर्वा, आथर्वणः आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। गोपथ ब्राह्मण[7] में अथर्ववेद का साक्षात् नाम ब्रह्मवेद रूपेण उद्धृत है। भागवद्पुराण[8] में एक ही वेद के 4 प्रकार बताये गये है। उपनिषदों में अथर्ववेद ही अभिहित है। अथर्ववेद का ऋग्वेदादि

से उपनिषद् पर्यन्त वर्णन उसके वेदत्व को ही सिद्ध करता है। अस्तु अथर्ववेद वेद ही है और वेदों की संख्या चार है।

अथर्ववेद की शाखाएँ– आचार्यसायण तथा चरणव्यूह आदि विद्वानों ने अथर्ववेद की नौ शाखाओं का वर्णन किया है।

महर्षि पतञ्जलि ने नवधा शब्द को प्रस्तुत किया है–

सायण द्वारा अथर्ववेद भाष्य भूमिका में नौ भाषाओं का वर्णन है– पैप्पलाद, तौद मौद, शौनकीय, जाजल, जलद, ब्रह्मवाद, देवदर्श एवं चारणवैद्य। वर्तमान समय में अथर्ववेद की दो ही शाखाएँ (शौनकीय एवं पैप्पलाद) प्राप्त है। शौनकीय शाखा अधिक प्रसिद्ध है। जिसमें 20 काण्ड, 630 सूक्त तथा 5987 मंत्र हैं।

मैकडॉनल प्रभृति कतिपय विज्ञान 18वें से 20वें काण्ड को परवर्ती माना है। डॉ0 ओम प्रकाश पाण्डेय[10] ने अपनी पुस्तक में इन मतों का वर्णन किया है।

अथर्ववेद के पाँच उपवेद गोपथ–ब्राह्मण में वर्णित है।

1. सर्पवेद– में सर्प एवं सर्पविषचिकित्सा वर्णित है।
2. पिशाचवेद राक्षस के कृत्य का वर्णन।
3. असुरवेद–असुर विषयक क्रियाकलाप का वर्णन।
4. इतिहास वेद प्राचीन कथाओं एवं राजवंशों का वर्णन।
5. पुराणवेद इसमें सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन है।

प्राकृतिक मानव–जीवन के लिए वरदान है। इसके सभी तत्त्व पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, चन्द्र आदि किसी न किसी रूप में प्राणि–जीवन के लिए परमोपयोगी हैं। प्रकृति के साहचर्य में रहने के कारण वैदिक ऋषि प्राकृतिक तत्त्वों में विद्यमान रोगादि उपरामन शक्ति में भलीभांति परिचित थे। इसलिए रोगादि का उपचार मन्त्र विद्या, मन्त्रसिद्धमणियों आदि के साथ–साथ प्रायः सुलभ प्राकृतिक साधनों से किया करते थे। वे विभिन्न रोगों का उपचार या तो वनस्पति औषधियों से करते थे। अथवा सूर्य, जल आदि प्राकृतिक तत्वों से किया करते थे। अथर्ववेद का साक्षात् सम्बन्ध आयुर्वेद से

होने के कारण आथर्वणिक ऋशियों ने भी रोगादि के निवारण के लिए अनेक प्रकार की चिकित्सा प्रणाली को अपनाया। उनमें प्राकृतिक चिकित्सा सर्वाधिक सुलभ रही है। 'अथर्ववेद' में उपलब्ध साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि तत्कालीन जन इस चिकित्सा–पद्धति के अन्तर्गत, जल, सूर्य, रश्मि, वायु, प्राणायाम, मिट्टी चन्द्रकिरण और यज्ञादि द्वारा मानव–जीवन उपचार को सुखमय बनाते थे। शरीर को स्वस्थ रखते थे तथा अनेक रोगों का उपचार भी किया करते थे। अथर्ववेद में इन प्राकृतिक साधनों द्वारा चिकित्सा का अनेकत्र उल्लेख प्राप्त होता है, जो इस प्रकार है–

जल चिकित्सा– 'ऋग्वेद' और 'अथर्ववेद' में जल चिकित्सा को एक महत्वपूर्ण चिकित्सा प्रणाली के रूप में देखा जा सकता है। जल के अधिष्ठात् होने के कारण रूद्र और वरुण देवों को जल–चिकितसा का आविष्कारक माना गया है। इसलिए रुद्र को प्रथम दिव्य विभिषक् तथा जल–चिकित्सा कहा गया है[11] और वरुण को वैद्यों का स्वामी एवं चिकित्सक।[12] इस चिकित्सा को 'जल भेषज' कहा जाता है और ऐसा माना जाता है कि यह रुद्र रूप आविष्कृत तथा वही इस विद्या के विशेषज्ञ है।[13] जल चिकित्सा अनेक रोगों की चिकित्सा करने की एक निश्चित पद्धति है जिसमें शीतल तथा उष्ण जल का बाह्याभ्यन्तर प्रयोग सर्वश्रेष्ठ आषधि होती है और उपचारार्थ प्रयुक्त अन्य सभी औषधियाँ प्रायः हानिकारक समझी जाती है। जल सर्वोत्तम औषध है, जल शरीर को पोषण प्रदान करता है, जल हृद्रोगों की दवा है, जल सुवैद्य है जल आरोग्यकारी है। अथर्ववेदीय ऋषियों ने जल के अनेक गुणों का उल्लेख किया है। तदनुसार जल हृदय के रोगों को दूर करने वाला[14], बलवर्धक[15], रमणीयता और सौन्दर्यवर्धक[16] एवं रोगनाशक है।[17] इसमें अमृत, सुखदरस व सभी औषधियों का गुण विद्यमान है।[18] इसलिए ऋषि अथर्वा ने जल को दिव्य औषधि माना है।[19]

इस प्रकार इस चिकित्सा से चर्म रोग, उदर रोग, प्रमेह, ज्वर ताप आदि अनेक रोगों का उपचार किया जाता है। भारतीय आयुर्वेद की मान्यता है कि प्रातःकाल उठते ही निहरिमुख (बासी) कम से कम 1 लीटर जल ग्रहण करने से, उदर रोग से मुक्ति मिलती है। जिससे अस्वस्थ मनुष्य भी स्वस्थ दिखाई पड़ने लगता हैं। वस्तुतः जल में अग्नि और सोम (शैप्य) दोनों तत्त्व होने के कारण यह प्राण शक्ति और तेजस्विता प्रदान करता है।[20] इसलिए अत्यधिक भोजन करने के

पश्चात् अनीर्ण (भोजन न पचने पर) अधिक जल पीने का विधान किया गया है। प्रातःकालीन शीतल जल से स्नान करने पर शीरीर नीरोग रहता है तथा इसमें स्फूर्ति व शक्ति का संचार होता है। अतः जलीय चिकित्सा एक अदभुत चिकित्सा पद्धति है जिसका सूत्रपात वैदिक ऋषियों ने किया था, जो आयुर्वेद में आज भी यथावत् प्रायोग की जा रही है।

सौर चिकित्सा–

वेदों में सौर चिकित्सा को मानव स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त उपयोगी माना गया है। ऋग्वेद में तो सूर्य को स्थावर जङ्गम जगत् का आत्मा बताया गया है।[21] तथा प्रश्नोपनिषद में इसे मानव जगत का प्राण कहा गया है।[22] सूर्य किरणों को मनुष्य के रंग व आयु के अनुसार प्रयोग करना चाहिए, रोगी को सूर्य के सम्मुख बैठने से भी रोग का निवारण होता है। छतरी खुली रखकर या महीन वस्त्र से ढक कर सूर्य की किरणों का सेवन करना चाहिए प्रातःकालीन एवं सायंकालीन सूर्याभिमुख सन्ध्याविधान का भी रहस्य है। अस्त एवं उदीयमान होते हुए सूर्य की किरणों का मनुष्य के स्वास्थ्य पर हितकर प्रभाव पड़ता है। इससे मनुष्य निरोग, दीर्घायु एवं स्वस्थ रहता है।

अथर्ववेद के अनुसर इसकी किरणों शरीर को सुख प्रदान करती है।[23] अतः स्वस्थ रहने के लिए इसका संस्पर्श अतिआवश्यक है। इसीलिए अथर्ववेदीय ऋषि ब्रह्मा ने सूर्य से सम्बन्ध न तोड़ने का निर्देश दिया है।[24] तथा यह भी बताया है कि सूर्य के प्रकाश में रहना अमृत से पूर्ण स्थान में रहने जैसा है, जिससे जीवन दीर्घायु होता है।[25] अथर्ववेद में सूर्य रश्मियों को अनेक रोगों का नाशक माना गया है। ऋषि भृग्वङ्गिरा द्वारा दृष्ट एक सम्पूर्ण सूक्त (8.9) में शिर, आँख, नाक, कान के दर्द सर्वविध ज्वर पीलिया हृदय रोग, उदर रोग, हड्डी पसली रोग, सक्ष्मा, व्रण, बात रोग, जोड़ों, रीढ़, कूल्हे, आदि रोगों का उपचार सूर्य की किरणों से किया जा सकता है।[26]

आधुनिक युग में यन्त्रादि संचालन के लिए और पकाने के कार्यों में भानु (सूर्य) की ऊर्जा का उपयोग होता है। गांव में जहां बिजली के साधन कम है वहां दिन में यन्त्रों के माध्यम से एकत्रित सूर्य की ऊर्जा से बिजली ही प्रयोग में लाई जाती है। अब कृषि कार्यों में भी सूर्य का उपयोग

किया जाता है। कुएँ के जल से खेतों को सीचने के लिए नए यंत्र सूर्य की शक्ति में संचालित होते है।

इस प्रकार सूर्य का उपयोग न कि चिकित्सा के क्षेत्र में देखने को मिलता है बल्कि वर्तमान समय में मानव जीवन के कार्यों के लिए उपयोगी समझा गया है।

वायु व प्राणायाम चिकित्सा–

मानव जीवन का आधार प्राण–वायु है। जीवन के सभी क्रियाएँ एवं शरीर में शक्ति, स्फूर्ति, उत्साह आदि प्राण की सत्ता पर ही निर्भर है। आकाश, पृथ्वी, जल वायु और अग्नि पाँच तत्त्वों में से वायु सबसे जरूरी तत्त्व है। जल जीवन है और वायु प्राणियों का प्राण ही है। यद्यपि माव को एक मिनट वायु न मिलने पर घबराने लगता है तथा काफी देर तक वायु का स्पर्श न हो तो प्राण भी निकल सकते हैं। इसलिए वायु मनुष्य के जीवन के लिए अतिआवश्यक है। शरीर के विभिन्न अंगों में विचरण करने और विभिन्न प्रकार के कार्य संपादित करने के आधार पर वायु के पांच प्रकार प्रधान माने गये हैं– प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान। इन पाँच प्रधान प्रकारों के अतिरिक्त वेद व्यासजी ने शिव और अग्निपुराण[27] में शरीर संचालन के लिए पाँच और भेदों को स्पष्ट किया है– नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय। ये दस प्रकार की वायु शरीर के विभिन्न अंगों को ऊर्जा एवं गतिशीलता प्रदान करती है तथा उन्हें दोषमुक्त करती है। 'प्राणायान समायोग, प्रणायामो भवति' (शांडिल्योपनिषद्) प्राण और अपान वायु के निरोध द्वारा रोगों के उचार पर बल देती है। प्राण वायु अर्थात फेफड़ों से श्वसन द्वारा भरी जाने वाली वायु जो सीने से मस्तिष्क तक के क्षेत्र में कार्य करती है तथ अपान वायु शरीर से मल–मूत्र आदि को विसर्जित करने के लिए पेट से नीचे की ओर प्रवाहित होने वाली वायु है। प्राण और अपान की यह क्रिया यदि शरीर में सुचारू रूप से चलती रहे तो शरीर स्वस्थ्य और निरोग रहता है।

वेदों में प्राण शक्ति की अत्यधिक महत्ता बतायी गयी है। अथर्ववेद में यह चराचर जगत् का स्वामी माना गया है[28] और इसी में सबकुछ प्रतिष्ठित बताया गया है।[29] वैदिक ऋषि भली भाँति यह जानते थे कि शररीर की नैरोग्य प्राणों की सबलता पर निर्भर है तथा उसके दौर्वल्य से शरीर में

अनेक रोग उत्पन्न होते है।[30] प्राणायाम क्रिया भी रोग निवारण का एक प्राकृतिक साधन माना गया है। 'मनुस्मृति' में तो प्राणायाम–चिकित्सा को धौकनी से उपमित करते हुए सरलतापूर्वक यह समझाया गया है कि जिस प्रकार धौंकनी की सहायता से अग्नि प्रदीप्त करके स्वर्णादि धातुओं को शुद्ध किया जाता है, उसी प्रकार प्राणायाम द्वारा शरीर के सभी दोषों को नष्ट किया जाता है।[31] योगशास्त्र के अनुसर यदि शरीर में किसी भी प्रकार का कष्ट उत्पन्न होता है तो उसका सम्बन्ध किसी न किसी रूप में मन से जुड़ा रहता है। मन को प्रभावित करना प्राण को वश में करना आवश्यक है–

पवनो बध्यते येन मनस्तेनैव बध्यते।

मनश्र बध्यते येन पवनस्तेन बध्यते।।

अतः रोगों से शरीर की सुरक्षा के लिए प्राणायाम चिकित्सा अत्यन्त उपादेय है।

अग्नि चिकित्सा–

प्राकृतिक चिकित्सा में अग्नि की भी महत्वपूर्ण भूमिका है। वेदों में अग्नि पावक शोधक माना गया है। पंचतत्वों में अग्नितत्व तीसरा उपयोगी तत्त्व है। अग्नि जल, पृथ्वी, दृश्य तत्वों में प्रमुख दृष्टा तत्व अग्नि ही होता है। आकाश और वायु तो महतत्व है। अग्नि तत्व को अग्नि देवता मानकर उसकी पूजा अर्चना का नियम शास्त्रों में लिखा हुआ है। ऋग्वेद के प्रथम मंत्र–

अग्निमीळे पुरोहित यज्ञस्य देवमृत्विजम्।

होतारं रत्नं धातमम्।[32]

में ईश्वर के समान ही रोग से मुक्ति पाने के लिए अग्नि की प्रार्थना की गयी है।

अथर्ववेद में अग्नि को भेषज स्वीकारा गया है। अग्नि द्वारा विष चिकित्सा भी की जाती है। वस्तुतः रोगाणु ही विषय है। रोगाणु को नष्ट करने हेतु रोगात्पादक कृमि कीटादि को मारने हेतु अग्नि में होम परमोपयोगी विधि है–

यथा–

'राजान्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदीविम्।

वर्धमान स्वे दमे।'[33]

अथर्ववेद में अग्नि को रोगात्पादक कृमियों का नाशक माना गया है।[34] तदनुसार अग्नि में गुग्गुल आदि के जलाने से रोग नष्ट हो जाते हैं, क्योंकि इसकी सुगन्ध रोग और रोगकृमियों को नष्ट करती है।[35] यही नहीं अग्नि को तेज वर्चस, ओजस्, दीर्घायु बल और यश का कारण भी माना गया है। यही अग्नि आक्सीजन के रूप में शरीर में प्राण शक्ति को उद्धृत करता है। इस प्रकार इन साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि अग्नि जीवन के लिए अनिवार्य ही नहीं प्रत्युत चिकित्सा का भी साधन है।

मृत चिकित्सा–

चिकित्सा की दृष्टि से प्राकृतिक पदार्थों में मिट्टी का भी महत्व है। वैदिक ऋषियों ने भी चिकित्सा के लिए मिट्टी का उपयोग बतलाया है। अथर्ववेद में पृथ्वी को माता कहा गया है–

यामश्विनावभिमातां विष्णुर्यस्यां विचक्रमे।

इन्द्रों यां चक्र आत्मने नमित्रां शचोपतिः।।

सानो भूमिर्विसृजतां माता पुत्राय में पयः।[36]

''अथर्ववेद'' में एकत्र ऋषि अङ्गिरा ने यह बताया है कि दीमक समुद्र अर्थात् भूमिगत जल–राशि से मिट्टी बाहर निकाल कर वमी बनाती है। अतः यह वह मिट्टी अस्त्राव (रक्तप्रवाह) रोकने की दवा है।[37] उन्होंने इसे रोग नाशक भी माना है और यह संकेत किया है कि मलहम के रूप में इसके लेप व प्रण पक जाता है और घाव ठीक हो जाता है।[38] इसी वेद में ऋषि गुरूत्मान्, ने अन्यत्र विष चिकित्सा के लिए भी दीमक की बमी की मिट्टी का उपयोग बताया है। इस प्रकार चिकित्सा के रूप में मिट्टी का अनेक प्रकार से प्रयोग किया जाता है। उदर विकास आदि में भी मिट्टी का लेप लगाने का विधान है। अतः अथर्ववेदीय मृत् चिकित्सा का विकास जिस प्रकार वेद प्राचीनकाल में था उसी प्रकार इसका प्रचलन आज भी विशेषकर शारीरिक सौन्दर्य आदि के लिए

मिट्टी में था उसी प्रकार इसका प्रचलन आज भी विशेषकर शारीरिक सौन्दर्य आदि के लिए मिट्टी (मुल्तानी मिट्टी) का लेप विहित है।

मानस चिकित्सा–

रोगों का उपचार मानस चिकित्सा के द्वारा भी किया जाता है। मैत्रायणी– 'उपनिषद्' के अनुसार मनुष्य का मन सुख और दुःख का कारण माना गया है।[39] यदि व्यक्ति का मन निष्कलात्मक है तो रोग शोक आदि की सम्भावना नहीं होती परन्तु यदि मन अशुद्ध है तो नाना प्रकार के रोगों की सम्भावना बनी रहती है। मानसिक चिकित्सा के द्वारा रोगी के मन में आत्मविश्वास जागृत किया जाता है। रोगी को ऐसा अनुभव कराया जाता है कि वह रोग का समाना करने में समर्थ है और धीरे धीरे रोगी ठीक हो रहा है। मन ही रोग मुक्ति तथा बन्धन और मोक्ष का कारण होता है। इसलिए श्रीमद्भागवत् गीता में मन पर नियंत्रण कठिन बताया गया है– ''मन के जीते जीत है मन के हारे हार''

मानव मन अनन्त शक्तियों का भण्डार है। यह असाध्य से असाध्य कार्य को भी साध्य बना सकताहै। यही मनुष्य को आत्मिक बल, मनोवल एवं इच्छा शक्ति देता हे। 'शतपथ ब्राह्मण'' मे एक मन को विराट् तथा परमब्रह्म माना गया है।[40] अतः ब्रह्म की भाँति यह अनन्त शक्तिवाला है। अथर्ववेदीय शन्तरित ऋर्षि का मन्तव्य है कि मन ही रोगादि का कारण है और वही उसका निवारक भी है।[41]

इस प्रकार मानस चिकित्सा आधुनिक काल में लोकप्रिय हो रही है। इससे असाध्य रोगों को ठीक किया जाता है। मानव चिकित्सा में मन की शुद्धता पर अधिक बल दिया गया है, क्योंकि मन की पवित्रता से रोगोपचार अतिशीघ्र हो जाता है। जब कोई औषध किसी विशेष रोग का उचार न कर सके तो रोगी की इच्छा शक्ति ही रोग का नाश करती है। इस प्रकार मानस चिकित्सा एक सफल चिकित्सा है। इसकी पुष्टि 'अष्टांङ्गहृदय' में उक्त वाग्भट के इस कथन से हो जाती है कि दयालु व रागद्वेष में रहित मन सर्वविध ज्वरों को नष्ट करने में समर्थ होता है।[42]

हस्तस्पर्श चिकित्सा–

वेदों में हस्तस्पर्श द्वारा भी रोगोपचार का संकेत उपलब्ध होता है। 'ऋग्वेद' और अथर्ववेद में एकत्र इस विधि का उल्लेख है।[43] अथर्ववेदीय कवि शन्तााति ने इस विषय में ऐसा विश्वास व्यक्त किया है कि रोगनिवारणार्थ ऐसा आश्वासन देना चाहिए कि '' मेरा दाहिना हाथ बहुत भाग्यशाली है और वामहस्त उससे भी अधिक भाग्यशाली है और वामहस्त उससे भी अधिक भाग्यशली है तथा दोनों हाथ सर्वविध रोगों की चिकित्सा में समर्थ है। इनके स्पर्श से रोगों का शमन हो जाता है।[44] इस प्रकार 'ऋग्वेद' और अथर्ववेद दोनों में इस प्राकृतिक चिकित्सा में दोनों हाथों दशों अंगुलियों के प्रयोग और मन्त्रपूर्वक हस्तस्पर्श के माध्यम से रूग्ण–पुरुष में प्रभूत प्राण शक्ति का संचार करके अपान के द्वारा रोग निवारण का उल्लेख करते हुए इस चिकित्सा को रोगानाशक बताया गया है।[45]

वर्तमान युग मेस्मारिज्म व हिप्नोहिज्म के रूप में हस्त चिकित्सा को देखा जाता है क्योंकि इन विधियों में भी प्राणशक्ति को बढ़ाने और अपान शक्ति द्वारा दूषित वायु को बाहर निकालने तथा हस्तस्पर्शपूर्वक मन्त्र पाठ अथवा आदेश वाक्यों के कथन का विधान है।

अतः निश्रेयन ऐसा कहा जा सकता है कि इन विधियों का विकास 'अथर्ववेद' में संकेतित 'हस्तस्पर्शचिकित्सा' से हुआ होगा। पाश्चात्य जगत् में इस चिकित्सा पर सम्प्रति अनुसंधान कार्य चल रहा है और इसका आधुनिकतम पश्चात्य रूप 'रेमी' चिकित्सा है, जिससे नाना रोगों का निवारण किया जा रहा है।

मन्त्र चिकित्सा–

मन्त्र से विविध शारीरिक एवं मानसिक रोगों में लाभ मिलता है। यह बात अब विशेषज्ञ भी मानने लगे हैं कि मनुष्य के शरीर के साथ–साथ यह समग्र सृष्टि ही वैदिक स्पन्दनों से निर्मित है। शरीर में जब भी वायु पित्तकफ नामक त्रिदोषों में विषमता से विकार पैदा होता है तो मंत्र चिकित्सा द्वारा उसका सफलतापूर्वक उपचार किया जाना संभव है।

अमेरिका के ओहियो यूनिवर्सिटी के शोधकर्ताओं के अनुसार कैंसरयुक्त फेफड़ों, आंत, मस्तिष्क, स्तन, त्वचा और फाइब्रोब्लास्ट की इलाइनिंग्स पर जब अथर्ववेद के मंत्रों और हनुमान

चालीसा के पाठ का प्रभाव गया तो कैंसर की कोशिकाओं की वृद्धि में भारी गिरावट आई। इसके विपरीत तेज गति वाले पाश्चात्य और तेज ध्वनि वाले रॉक संगीत से कैंसर की कोशिकाओं में तेजी के साथ बढ़ोत्तरी हुई।

मन्त्र चिकित्सा के लगभग पचास रोगों के पाँच हजार मरीजों पर किए गए क्लीनिकल परीक्षणों के अनुसर दमा, अस्थमा रोग में 70 प्रतिशत स्त्री रोगों में 65 प्रतिशत त्वचा एवं चिंता सम्बन्धी रोगों में 65 प्रतिशत, उच्चरक्तदाब हाइपरटेंशन से पीड़ितों में 55 प्रतिशत के लाभ में निश्चित ही मंत्र चिकितसा उन लोगों के लिए वरदान ही है जो पुराने और जीर्ण क्रॉनिक रोगों से ग्रस्त हैं।

कहा भी गया है कि जब भी कोई व्यक्ति गायत्री मंत्र का सस्वर पाठ करता है तो अनेक प्रकार की संवेदनाएँ इस मंत्र से होती हुई व्यक्ति के मस्तिष्क को प्रभावित करती है। जर्मन वैज्ञानिक कहते हैं कि जब भी कोई व्यक्ति अपने मुंह से कुछ बोलता है तो उसके बोलने की आवाज का जो स्पंदन और वंदन होता है वह 175 प्रकार का होता है। जब कोई कोयल पंचम स्वर में गाती है तो उसकी आवाज में 500 प्रकार का प्रकंपन होता है लेकिन जर्मन वैज्ञानिक यह भी कहते हैं कि दक्षिण भारत के विद्वानों से जब भी विधिपूर्वक गायत्री मंत्र का पाठ कराया गया तो यंत्रों के माध्यम से यह ज्ञात हुआ कि गायत्री मंत्र का पाठ करने से सम्पूर्ण स्पंदन के जो अनुभव हुए वे 700 प्रकार के थे।

अथर्ववेद के मंत्रों का कहना है कि अगर कोई व्यक्ति पाठ नहीं करे, अगर सुन भी ले तो उसके शरीर पर इसका प्रभाव पड़ता है। ध्वनि तरंग के माध्यम से भी अथर्ववेद में चिकित्सा के महत्व को बताया गया है। ये तरंगे सूर्य शक्ति के साथ प्राणापान शक्तियों के साथ शरीर में प्रविष्ट होकर रक्त को मन को व मस्तिष्क को प्रभावित करती है।

यज्ञ चिकित्सा–

वैदिकयज्ञ भी उत्तम स्वास्थ्य प्राप्ति का एक महत्वपूर्ण साधन है। प्राचीन काल में रोग अथवा महामारी फैलने पर बड़े–बड़े यज्ञ सम्पादित किये जाते थे, जिनसे प्रजा आरोग्य लाभ करती थी।

छान्दोग्योपनिषद् के अनुसर भेषज गुणों का ज्ञाता अथर्ववेद से ब्रह्मा नामक व्यक्तित्व जिस यज्ञ में होता है, वह यज्ञ भेषजकृत माना जाता है।[46] अथर्ववेद में यज्ञ सामान्य रूप से चिकित्सा उपदेशों के साथ–साथ विशेष द्रव्यों से रोग विशेषों का भी संकेत प्राप्त होता है। ऋषि अथर्वा के एक मंत्र में ऐसा उल्लेख है कि जिसे गग्गुल औषधि की उत्तम सुगन्ध प्राप्त होती है उसे राजयक्षमा (तपेदिक) तथा स्पृश्य (संक्रामक) रोग नहीं होते।[47] आयुर्वेद ग्रन्थ भूमिका– भास्कर से भी यह ज्ञात होता है कि सोमलता, गुग्गुल चिरायता आदि रोग नाशक औषधियाँ अग्नि द्वारा छिन्न भिन्न होकर सहस्त्र गुण शक्तियुक्त होकर जलवायु को शुद्ध करती है तथा वातावरण को प्रदूषण से मुक्त करती हैं।[48] अतः यज्ञ में आहुत औषधियाँ अनुकूल वातावरण द्वारा मनुष्य को रोग से मुक्त करती है।

इस प्रकार अथर्ववेद उपलब्ध उपर्युक्त उल्लेखों से स्पष्ट हो जाता है कि तत्कालीन जनरोग परामनार्थ प्राकृतिक–चिकित्सा निर्भर करते थे। वे प्राकृतिक सुलभ साधनों से अनेक रोगों का उपचार किया करते थे और स्वस्थ्य जीवन जीते थे। अथर्ववेद में संकेतित इस चिकित्सा प्रणाली से अनेक आधुनिक चिकित्सा पद्धतियाँ भी विकसित हुई है, जिनका आज बहुत प्रचार–प्रसार हो रहा है। यज्ञ चिकित्सा पद्धति एक स्वस्थ सुलभ सर्वथा दोषरहित तथा सर्वाधिक उपादेय चिकित्सा प्रणाली मानी जा सकती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. व्याख्याय वेदत्रयम् आमुष्मिकफलप्रदम्।

   एहिकामुष्मिकफलं चतुर्थ व्याचिकीर्षिति।। (अथर्वभा0 श्लोक–10)।

2. Atharveda has lost more of its force and beauty for demens happiness by the laps of three thousand year fundameara thaching of vedes, page no. 128

3. From anthropological point of view the collectgion has most importence. especially in view of its great antiguity Anothother things it gives us the first outline of Indian medicine the histeory of vedic India. page no. 31.

4. स व एष त्रिभिर्वेदैर्यज्ञस्यान्तरः पक्षः संस्क्रियते।

   मनसैव ब्रह्म यज्ञस्यान्तरं यज्ञं संस्करोति'–(गो0ब्रा0 3/2)

5. तेषामृग्यत्रार्थवशेन पादत्यवस्था। गीतिषु समाख्या। शेषे यजुः शब्दः (पूर्वमीमांसा 2/3/35–36)

6. इममु त्यमेदथर्ववेद्ग्निं मंन्थन्ति वेधसः।

   यमंगङ्कुयन्तमानयन्नमूरं श्याव्याश्यः।। (ऋ0 6/15/17)

   त्वमग्ने पुष्करादध्यथर्वा निरमन्थत।

   मूर्ध्नो विश्वस्य वाधतः।। (क0 6/16/13)

7. त्वारो वा इमें वेदाः ऋग्वेदों यजुर्वेदः सामवेदो ब्रह्मवेद इति।

   (गो0ब्रा0 1/2/16)

8. त्यद्धाद् यज्ञसंतत्यै वेदमेंक चतुर्विधम्

   ऋग्यजुः सामथर्वाख्या वेदाश्चत्वारः उद्धृतः। (भागवत् 1/4)

9. नवधाऽथर्वणो वेदः। (महाभाष्य 1/19–20)

10. वैदिक साहित्य और संस्कृति का स्वरूप, पृ0 199

11. यजु0 16.5 .... प्रथमोदैव्योभिषक्। ऋ0 1.43.4: .... रूद्रं जलाषभेषजम्।

12. वही 11.40:.....वरुणं भिषजां पातिम्।, वही 19.80.....वरुणों भिषज्यन्

13. अथर्व0 6.57। ..... इदं रूद्रस्य भेषजम्। वही, 2.27.6: रूद्र जलाषभेषजः।

14. अथर्ववेद 6.24.1: आपो.....हृद्धोतभेषनम्

15. वही, 1.5.1: आपो हिष्ठामयोभुवस्ता न ऊजै दधातन्।

16. वही, 1.5.1।

17. वही 1.6.1, 3.1

18. वही, 1.4.4: अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजम्। अपमुतप्रशस्ति भि–1 वही, 1.5.2, वही 1.6.2: अप्सु में सोमो अब्रवीदन्त र्विश्वानि भेषजा।

19. वही, 8.7.3: आपो अग्रं दिव्या ओषधयः।

20. अर्थ0 3.13.5 (मूल पाठ हेतु द्रष्टव्य पाद टिप्पणी सं0 38)।

21. ऋ0 1.115.2: सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।

22. प्रश्नोप0, 1.6: प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्यः।

23. अथर्व0, 8.1.5: सूर्यस्ते तन्वे शं तपति त्वां मुत्युर्दपतां भा, प्रमेष्ठाः

24. वही, 8.9.4: मच्छित्वा अस्माल्लोकादग्नेः सूर्यस्य संदृशः।

25. अथर्व0, 8.1.1।

26. अथर्व, 1.8.1–22

27. उत्तर0 37/35–40

28. अथर्व0, 11.0.10: प्राणो सर्वस्येश्चरोयच्च प्राणतियच्चन।

29. वही 11.4.1' प्रणाम नमो यस्य सर्वभिदं वशे योभूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिनृसर्वंप्रतिष्ठितम्। वही, 11.4.15:..... प्राणे ह भूतं भव्यं च प्राणे सर्वं प्रतिष्ठित्।

30. वही 11.4.11।

31. मनुस्मृति, 6.71: दहन्ते ध्मायमानानां धातूनां हियथामलाः।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाःप्राणस्य निग्रहात्।।

32. ऋ0 1/1/1 (अग्नि सूक्त)

33. ऋ0 1/1/8 (अग्नि सूक्त)

34. अथर्व0 5.23.13: सर्वेषां च क्रिमीणां सर्वासां चक्रिमीणाम्।
भिनद्रभ्यश्मन्नशिरो दहाभ्याग्निा मुखम्।।
वही, 1.28.1–2 भी द्रष्टव्य है।

35. अथर्व0 19.38.1: न तं यक्ष्मा अरुधते नैनं शपथो अश्नुते।
यं मेषजस्य गुगुलोः सुरभिर्गन्धो अग्नुते।

36. अर्थ0 12/1 (पृथ्वी सूक्त)

37. अथर्व, 2.3.4: उपजीविका उभ्द्रन्ति समुद्रादधि भेषजम्
तदास्त्रावस्य भेषजं तदु रोगमशीशमत।।

38. अथर्व, 2.3.5: अरूः स्त्राणमिदं महत पृथिव्या अध्युदभृतम्
तदास्त्रावस्य भेषजं तदु रोग मनीनशत्।।

39. मैत्रा0उप0 4.11: मन एवं मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः।

40. श0ब्र0 14.6.10.15: मनो वै सम्राट परमं ब्रह्म.....।

41. अथर्व0 19.9.4: इदं यत् परमेष्ठिनं मनो वांब्रह्मसंशितम्।
येनैव ससृजे घोरं तेनैव शान्तिरस्तु नः।।

42. अष्टाङ्ग0 चिकित्सित0, 1.173: करुणार्द्रं मनः शुद्धं सर्वज्वरविनाशनम्।

43. ऋ0 10.137.1–7 अथर्व0 4.13.1–7

44. अथर्व 4.13.6: अयं मे हस्तो भगवानं अपं मे भगवन्तरः।
अयं मे विश्वभेषेजोऽयं शिवाभिमदर्शनः।।

45. वही 4.13.7: हस्ताभ्यां दशशाखाभ्यां जिह्वा वाचः पुरोगवी।
अमामपित्नुभ्यां हस्ताभ्यां ताभ्यां त्वामिमृशामसि।

46. छन्दो0 उप0 4.17.8: भेषजकृतो हवा यज्ञोयतैवंविदं ब्रह्मभवति।

47. अर्थ019.38.1: न तंयक्ष्मा अरुन्धते नैनं शपथोअश्नुते

यं भेषजस्य गुग्गुलोः सुरभिर्गन्धो अश्नुते

48. द्रष्टव्य भूमिका भास्कर, प्र0 204।